तिब्बत : इतिहास एवं वृतान्त (I)

संक्षिप्त सर्वेक्षण : 127 ई० पू० से 1885 ई० तक 1959

तिब्बत इतिहास तथा वृतान्त : जो चीन के इस दावे कि "तिब्बत चीन का एक अभिन्न हिस्सा है" को उचित ठहराने के लिए विशेष तौर से रचा गया था, बीजिंग रिव्यू, ग्रन्थ 26, अंक 24, जून 13, 1983 में तोड़-मरोडकर तथा अधूरे रूप में छपा था।

तिब्बत के ऐतिहासिक सर्वेक्षण का निम्नलिखित सारांश, सही तथ्यों को सामने रखने का प्रयास है।

महान् शक्तियां रात भर में ही नहीं पैदा हो जातीं, तिब्बत का स्वतन्त्र अस्तित्व तथा स्वतन्त्र ऐतिहासिक उन्नति, शताब्दियों के विकास तथा संघटन का परिणाम है।

लाब्संग तथा जिन यून नामक "शोधकर्त्ताओं" ने अस्पस्ट तौर तथा बेदिली से महान शासक सौङत्सेन गैम्पो को मान्यता दी है लेकिन, यह उन्होंने जानबूझकर नहीं माना कि वह तिब्बत का तेंतीसवा राजा था। तिब्बत का पहला राजा न्यीतरी त्सेंपों, जिसका अर्थ है : सिंहासन पर गर्दन वाला राजा" गिना जाता है जो 127 ई. पू. सिंहासन पर बैठा था।[1] यहीं से वर्तमान राजकीय तिब्बती कलैण्डर का "रायल भूटान वर्ष" गिना जाता है। उसने याबुलाखङ के नाम से प्रसिद्ध पहला किला बनवाया था।[2]

फर्क यही है कि उस लेख में तिब्बती इतिहास के 831 महत्वपूर्ण साल सिर्फ इसीलिए छोड़ दिए गए थे कि उन वर्षों का चीनी साम्राज्य या उसके लंबे चौड़े दावों से कुछ लेना देना नहीं है।

रिव्यू का कहना है कि लेखकों ने "तिब्बत के इतिहास को सुनियोजित ढंग से बिगाड़ा है।" लेकिन, यह (लेख) दयनीय ढ़ंग से ऐसा कर नहीं पाया यद्यपि यह स्पष्ट है कि इसमें उन बहुआयामी पहलुओं पर (टिप्पणी करने से) विवरण देने से बचा गया है, जिन से इतिहास बनता है।

जहां से लेखकों ने शुरूआत की है, उस अवधि के प्रारम्भ से संक्षित इतिहास यहां दिया जा रहा है। (1)

सम्राट सौङत्सेन गैंपो (617—619) के समय एशिया में समान हैसियत के राज्यों के बीच विवाह-सम्बन्ध आम बात थी। सम्राट ने

चीनी राजकुमारी वेन चेंग कुंग-चू के अलावा नेपाल के राजा अंशुवर्मन की पुत्री राजकुमारी भृकुटि देवी से भी शादी की थी।[3] तर्कशास्त्र के अनुसार आसानी से कहा जा सकता है कि तिब्बती सम्राट नेपाली सम्यता का प्रशंसक था और लेखकों ने भी तर्क दिया है कि इस शादी से निस्संदेह ही "दोनों देशों के बीच नजदीकी संबंध और मजबूत हुए।"

चीनी सम्राट तआई त्सुंग की समाधि के पास सम्राट सौङत्सेन गैंपो का बुत इसलिए बनाया गया था कि इससे सम्राट त्सुंग का सम्राट गैंपो के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट होता था।

648 ई. में चीनी सम्राट ने वांग यून-त्से के नेतृत्व में भारतीय सम्राट हर्ष (606-47) के दरबार में एक सद्भावना मण्डल भेजा था। इसी दौरान हर्ष की सत्ता उसी के अर्जुन नामक एक मंत्री ने ले ली थी और उसी के आदेशों तहत वांग यून-त्से के तीस के तीस अंगरक्षकों को मौत के घाट उतार दिया गया था। यद्यपि, वांग भागकर नेपाल पहुंच गया और वहां से उसने तिब्बती सम्राट से सहायता मांगी। सम्राट ने चीनी मंत्री को तुरन्त सहायता दी ताकि वह अपमान तथा अंगरक्षकों की मौत का बदला ले सके। चीनी सम्राट इस सहायता से इतना आभारी हुआ कि उसने मृत्यु के बाद अपनी कब्र के पास तिब्बती सम्राट का बुत बनाने का अनुबन्ध किया।

लेखक आगे कहते हैं कि राजकुमारी वेन-चेन कुंग-चू अपने साथ 641 में हान भाषा में लिखी कई पुस्तकें तिब्बत ले गई। आधुनिक तिब्बती लिपि, विद्वान थोनमी सम्भोटा ने गुप्तकालीन लिपि की सहायता से खोजी थी। इन परिस्थितियों में यदि "राजा तांग सभ्यता का प्रशंसक है" जैसा लेखकों ने दावा किया है, तो उसने तिब्बत में हान भाषा को अपनाया या चलाया क्यों नहीं? यकीनन यह तांग सभ्यता के प्रति 'प्रशंसा' का प्रतीक नहीं है। इसके विपरीत काफी लड़ाई के बाद आक्रामक तिब्बती सम्राट को खुश करने के लिए चीनी राजकुमारी वधू के रूप में सौंपी गई थी।[6]

लेखक 641 में 710 ई. के बीच के 59 वर्षों के तिब्बती प्रतिहास को छोड़ गए जिस दौरान ऐतिहासिक महत्व की कई घटनाएं हुईं।

सम्राट सौङत्सेन गैंपो के पोते मंगसांङ सौङत्सेन (649-76 ई.), और खरी-द- सौङत्सेन (670-704) और क्रीद-त्सुंगत्सेन मी अगत्सम

(704-55 ई.) सभी नाबालिग थे और "महान मंत्री" के रूप में एक राज-प्रतिनिधि उनके माध्यम से शासन करता रहा ।[7]

665 ई. में गार ताङस्तेन ने मंगसांङ के राज-प्रतिनिधि के रूप में काम करते हुए 655 से 663 ई. तक आठ साल तू-यून-हून (चीन के आश्रित) राज्य के विरूद्ध सैनिक अभियानों का संचालन किया और अन्ततः एक विजेता के रूप में उभरा ।[8]

663 ई. में तिब्बतियों ने तू-यून-हून राज्य को पूरी तरह तहस-नहस कर दिया और मैगा तोमन-खां की उपाधि वाले अशा राजा को कांगपो और म्यांग के राजकुमारों के स्तर पर तिब्बती साम्राज्य में स्वीकार किया। अशा के पतन के बाद शीघ्र ही तिब्बती सेनाओं ने 622 ई. में कशगर तथा 665 ई. में खोतान की तरफ बढ़ते हुए तरीम घाटी (आज का पूर्वी तुर्किस्तान) के चीनी अधिपत्य वाले क्षेत्र पर हमला किया ।[9] जी-मा-खोल (ता-फे घाटी में) एक चीनी रिलीफ (सहायता) सेना हराई गई और 670 ई. में तिब्बतियों ने बाकी बचे कुचा तथा कराशहाहर के किले जीत लिए ।[10]

688 में दरेम खोल में एक बड़ा फौजी किला बनाया गया और उसके अगले वर्ष ही तू-यू-हन ने तिब्बती सम्राट खरी-द-सौङत्सेन के प्रति वफादारी की शपथ ली ।[11]

तरीम घाटी पर कब्ज़े के संबंध में, सभी संबंधित दस्तावेज़ों का अध्ययन करने वाले क्रिस्टोफर ने निष्कर्ष दिया है "तरीम घाटी पर तिब्बती विजय सुनियोजित ढंग से लागू की गई रणनीति, कूटनीति और अति खूंखार सेना का मिला-जुला परिणाम था ।"[12]

सम्राट काओ-त्सग (650-83) ने पूर्वी तुर्किस्तान के चार गढ़ों पर पुनः कब्ज़े के लिए ह्सुच-जेन-कुई को 100,000 फौजियों की सेना का सेनापति नियुक्त किया। यह सेना ता-फेई-चुआन में हार गई और इस असफलता के लिए जनरल ह्सुच को पदाच्चयुत कर दिया गया ।[13]

इस प्रकार तिब्बत ने मध्य एशिया में तिब्बती साम्राज्य की नींव रखी। उदाहरण के लिए पूर्व में तिब्बत हुंजा तक फैला था और शायद यह फैलाव स्वेट, फरगना और समरकन्द तक था ।[14]

उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में तिब्बत के उघुर्स तथा पश्चिमी तुर्कों (ताउ-किचू) तक जा पहुंचा जो वर्तमान उज़्बेकिस्तान तक फैले क्षेत्र में स्थित थे ।[15]

दक्षिण में तिब्बती अधिपत्य नेपाल के राज्य तथा भारत की तरफ हिमालय की पहाड़ी जनजातियों पर था। और इधर तिब्बत का अधिपत्य ऊपरी बर्मा तक पहुंच गया था।[16]

पलड़ा भारी होने के कारण तिब्बती पूर्व में चीनियों के लिए कठिनाई का स्त्रोत थे।

671 ई. में सम्राट त्सुंग ने च्यांग का'ओ को सेनापति बनाकर एक और चीनी सेना तिब्बतियों के विरूद्ध भेजी। लेकिन सेनापति की बीच रास्ते ही मृत्यु हो जाने से सेना वापिस आ गई।[17]

676 ई. में तिब्बतियों ने तिब्बत वापिस लौटते समय लूट के माल सहित शान-चाऊ पर चढ़ाई कर दी। चीनी सम्राट ने फौरन आदेश देकर प्रधानमंत्री ल्यू-जेन-कुई को ताओं-हो सैनिकों तथा एक और कमाण्डर ली-यू के साथ लियांग-चाऊ भेजा। इससे पहले कि यह सेना रवाना होती, तिब्बतियो ने कांसु में तई-चाऊ, मी-कुंग तथा तान-लिंग शहरों पर धावा बोल दिया।[18]

बदले में ली चींग-युआन नामक एक नए जनरल ने लांगजी में तिब्बतियों पर आक्रमण करके उन्हें हरा दिया। वह कोकोनोर की तरफ बढ़ा लेकिन, यहां सेनाएं हार गईं और उसे पीछे हटना पड़ा।[19]

710 ई. में तिब्बत के 36वें राजा त्री-सौङत्सेन को चीनी राजकुमारी चिन-चेंग कुंग चू इस एकमात्र आशा के साथ सौंपी गई कि इस सद्‌भावना से चीन और तिब्बत की आपसी दुश्मनी खत्म हो जाएगी। चीन से बाहर आकर एक बारगी राजकुमारी नाखुश थी और फरार होना चाहती थी। उसकी इस योजना की सूचना शी-ताशी दासों के एक मंत्री द्वारा चीनी सम्राट को दे दी गई। चीनी सम्राट ने उसी समय उसे अपने तथा देश के हित में वहीं रहने की सलाह दी, जिसे उसने बेमन से मान लिया।[20]

यह दावा कि "उसने (राजकुमारी की) गतिविधियों ने एक तरफ तिब्बत तथा दूसरी तरफ हानों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ाने हेतु महत्वपूर्ण योगदान दिया" विवादास्पद है। तिब्बती इतिहासकारों का दृष्टिकोण इससे अलग है। चूंकि, वह तिब्बत में अप्रसन्न थी अतः यह कल्पना करना तर्कसंगत नहीं लगता कि उसने दोनों देशों के बीच संबंधों के विकास के लिए गतिविधियों में हिस्सा लिया होगा। और फिर हम जानते हैं कि अपने पिता के निर्देशों के

अनुसार वह तिब्बत विरोधी गतिविधियों में लगी रही तथा बहुत से महत्वपूर्ण सुरक्षा भेद चीनियों को दिए।

तिस पर भी 722 ई. में तिब्बतियों ने छोटे बलूर (जो तांग का पश्चिमी दरवाज़ा माना जाता है) पर आक्रमण किया।[21] 732 ई. में अरब तथा तुर्क दूतों ने तिब्बती दरवाज़ा में कर/सलामी दी।[22]

दूसरी तरफ सम्राट हुसुआन-त्सुंग ने फौजी हमले बढ़ा दिए। उसी समय चीन ने तिब्बत तथा पश्चिम में उभर रही शक्ति अरबों के बीच दरार पैदा करने की नाकाम कोशिश की; तथा रणनीति के लिहाज से महत्वपूर्ण बर-झा (जो 737 में गिलगित था) को तिब्बतियों द्वारा लेने से रोकने की भी बेकार कोशिश की।[23]

741 ई. में शान्ति-वार्ता की मांग हेतु तथा चीनी राजकुमारी चीन-चेंग कुंग-चू की मृत्यु का समाचार देने एक तिब्बती मिशन चीनी दरबार में गया। लेकिन, चीनी सम्राट ने किसी भी वार्ता से इन्कार कर दिया। इसके फ़ौरन बाद 400.000 आदमियों की तिब्बती सेना चीन में बढ़ी, चेंग-फेंग शहर पर हमला किया तथा और आगे बढ़ती रही। लेकिन, चांग-निंग के पुल पर जनरल शेंग-हशी-येह ने उन्हें रोक दिया। तिब्बतियों ने बाद में शीह–पुह पर कब्ज़ा कर लिया जो 748 ई. तक उनके कब्ज़े में रहा।[24]

और आठवीं शताब्दी के पूरे उतरार्द्ध में चीन तथा तिब्बत के बीच लगातार सीमा-तनाव बना रहा। क्या ये तथ्य यह इशारा करते हैं, जैसा लेखकों ने दावा किया कि राजकुमारी चिन चेंग की शादी से "हान और तिब्बतियों के बीच राजनैतिक रिश्ते मजबूत हुए?"

763 ई. में राजा ख्री सोङ-देत्सन (755-47) के आदेश पर तिब्बती सेना ने तांग चीन के सुदूर पश्चिमी दो राज्यों हो-हशी तथ लुंग्यू पर कब्ज़ा कर लिया। उसी वर्ष चीन की राजधानी चांग आन की तरफ बढ़कर तिब्बतियों ने कुआंग-वू के राजकुमार चेंग-हंग को सम्राट बना दिया; उसने बदले में अपने राज्य के लिए ता-शी की उपाधि चुनी। नए सम्राट को टर्क्वाईज़ (नीले-हरी वैदुर्य-मणि) के अक्षरों की बनी टर्क्वाइज़ मोहर भेंट की गई।[25] यह मज़े की बात है कि चीन में जब भी कोई नया सम्राट गद्दी पर बैठता इसे नए साल की शुरूआत मानी जाती। इसलिए नए सम्राट को सिंहासन पर बिठाकर तिब्बतियों ने नए साल के शुरू होने की घोषणा की। पन्द्रह दिनों बाद

वे चीन की राजधानी से चले गए।[26] यह अविस्मरणीय विजय आने वाले वर्षों के लिए ल्हासा के शोल डोरिंग (पत्थर स्तम्भ) पर आज तक सुरक्षित है तथा इसका एक हिस्सा इस तरह पढ़ने में घाता है :-

विद्वान राजा ख्री सौङ देत्सन जिनकी कौंसिल (परिषद्) काफी विस्तारपूर्ण थी; और उन्होंने राज्य के लिए जो कुछ भी किया, पूर्ण सफलता से किया। उन्होंने चीन के कई किलों और ज़िलों पर विजय पाई तथा अपने अधीन रखा। चीनी सम्राट हेहू-काई-वांग तथा उसके मंत्री आँतकित हो गए। चीनियों ने कई वर्षों तक के लिए हर साल रेशम के 50,000 थान का कर देने की पेशकश की, और वे यह कर देने को मजबूर थे।[27]

राजा अपना अभियान बाल्टिस्तान तथा गिलगित के पश्चिम ता-तंग में भी ले गया और भारत में हिमालय की दक्षिणी भूमि बगाल और बिहार पर भी चढ़ाई की।[28]

उसी समय 775 ई. में साम्ये नाम से जाने जाने वाले पहले तिब्बती बौद्ध मठ भिग्युर-लहुगी दग्पई त्सुकला खङ (मंदिर जो बदलता नहीं, जो पूर्ण है) की स्थापना की गई और उस वर्ष ही बौद्ध धर्म को तिब्बत का राज धर्म घोषित कर दिया गया।[29]

अंत में 783 ई. में तिब्बत और चीन के बीच शान्ति वार्ता के फलस्वरुप चींग-शुई की सन्धि हुई जिसने इन दोनों देशों के बीच सीमा-रेखा निश्चित की।[30] और तरीम घाटी (पूर्वी तुर्किस्तान पर तिब्बत का अधिपत्य 692 में खत्म हो गया, 790 में कब्ज़ा पुनः हुआ जो 860 तक चला)[31] समेत जीते गए चीनी क्षेत्र पर तिब्बत का अधिपत्य स्वीकार किया गया। चीन अपने छिन गए क्षेत्रों को दोबारा जीत पाने की किसी भी हालत में नहीं था, क्योंकि, इसका कारण अन्य बातों के अलावा 755 ई. में शुरु हुआ एन-लू शान का खूंखार विद्रोह भी था।[32]

दक्षिण में बिहार और बंगाल का राजा धर्मपाल तिब्बतियों का दास बन गया; यही वजह है कि मुस्लिम लेखकों ने बगाल की खाडी को 'तिब्बती समुद्र कहा है।[33] तिब्बती सेना पश्चिम में पामीर (722-757) की तरफ बढ़ी और ऑक्सस नदी तक पहुंच गई। अपनी इतनी दूरी की निशानदेही के लिए ऑक्सस नदी के उत्तर में एक झील का नामकरण तिब्बतियों ने "अल-तुब्बत" (यानि छोटी तिब्बती झील)

किया ।[34]

ख्री सौङ देत्सन के समय में तिब्बत ने तुर्की कार्लग्स, शी-तो तथा अन्य पश्चिमी तुर्कों समेत कई सैनिक संधियां कीं ।[35]

750 ई. में पिलावको का पुत्र कोलोफेंग, सियाम का राजा बन गया और उसके शासन के दौरान तिब्बत से कई सन्धियां हुई। इमोसम, जो कोलोफेंग के बाद सियाम के राजा बनों ने, 778 में तिब्बत से सहायती मांगी और तिब्बती तथा सियामियों की सेनाएं सझेचुन में चीनियों के विरुद्ध कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ीं। आठ साल तक वहीं ठहरने के बाद जब चीन और थाइलैण्ड के बीच शान्ति हुई तब तिब्बती सेना थाइलैंड से वापिस लौटी ।[36]

कुछ ही साल बाद अरब के खलीफा हारुन अल राशीफ ने तेजी से शक्तिशाली रुप में उभर रहे तिब्बत के विरुद्ध चीन से अपनी सुविधा हेतु थोड़े समय के लिए समझौता किया ।[36] इस संबंध में पेटेश ने कहा है :—

यह तथ्य, कि तिब्बत राज्य के विस्तार को रोकने के लिए पूर्व मध्य युगीन दो अतिशक्तिशाली सम्राटों के बीच सन्धि बहुत जरुरी थी, उन दो बहादुर पर्वतीय सम्राटों को राजनैतिक क्षमताओं तथा कुशलताओं का, विशद गवाह है ।[38]

यद्यपि, त्री सौङत्सेन सागस्टन (799-815) जिसे आमतौर पर सनलेन कहा जाता है, के शासन के दौरान तिब्बती सेना पश्चिम में अरबों की नाक में लगातार दम किए रही। या कूबी के अनुसार तिब्बतियों ने ट्रांसोक्जेनिया की राजधानी समरकन्द पर भी कब्जा जमा लिया था। हारुन अल-रशीद के दूसरे बेटे अल-मा'मून ने तुर्किस्तान के तिब्बती राज्यपाल से समझौता किया। राज्यपाल ने अल-मा'मून को सोने तथा हीरे-जवाहरात से बनी एक प्रतिमा दी, जिसे बाद में मक्का में काबा भेज दिया गया ।[39]

49 वें राजा राल्पाचेन ने सत्ता हासिल करने के बाद हरांग्जे त्सेन के नेतृत्व में चीन की सीमा की तरफ सेना भेजी। लेखकों का दोषारोपण कि "दोनों तरफ मित्रता एवं सन्धि करने की तीव्र इच्छा विद्यमान थी" सच नहीं है। सच तो यह है कि चीनी सेना के थक जाने के कारण 821-22 में सन्धि हुई। यह विलक्षण सन्धि सिर्फ तिब्बती लामाओं के बौद्ध अनुयायियों तथा हर्षांगज के नाम से विख्यात चीनी साधुओं की मध्यस्थता के कारण हो पाईं ।[40]

इस सन्धि ने सिच्आन के पश्चिमी भाग. पूर्वी तुर्किस्तान तथा व्यावहारिक रुप से सारे कांसू पर तिब्बती अधिपत्य को सुदृढ़ किया। इस सन्धि ने चींग शुई की 783 को सन्धि के अनुसार स्थापित की गई सीमा-रेखाओं की भी पुष्टि की। गुगू मेरु नाम से प्रसिद्ध चीनी-तिब्बत सीमा क्षेत्र में एक पत्थर के स्तम्भ द्वारा सीमान्त प्रदेश की निशानी बनाई गई और इसी तरह के स्तम्भ चीनी सम्राट के महल के सामने तथा ल्हासा में जोखंग के सामने भी बनाए गए थे।[41]

शपथ-ग्रहण समारोह के दौरान पशु-बलि दी गई और प्रतिभागियों ने इस पशु के लहू का अपने होंठों पर लेप किया था। सिर्फ बौद्ध मंत्री पालगई योन्टेन इस प्राचीन युगीन रक्त समारोह से अलग रहे। और उन्होंने बुद्ध का आह्वान करके शपथ ली। इस प्रकार तथाकथित "तंग-तिब्बत सन्धि" का तिब्बत को प्रभुसत्ता से कुछ लेना देना नहीं था प्रभुसत्ता वाले देश कहीं और कभी भी अपनी इच्छा से खुद की या दूसरे देश की प्रभुसत्ता हैसियत के बदले बिना सन्धि कर सकते हैं।[42] यह बात ठीक दर्ज की गई है कि इस द्विपक्षीय सन्धि ने "तंग-तिब्बत विवाद खत्म कर दिया" और उसके बाद दोनों देश शान्तिपूर्वक रहे।

आगे लिखा गया है कि 842 ई. में लंग दर्मा (836-842) की हत्या के बाद "मध्य 9वीं शताब्दी ने तिब्बती राज्य का पतन देखा।" इससे तिब्बती इतिहास की प्रारंभिक अवधि का अन्त हुआ जिसे तिब्बती धार्मिक राजाओं का युग या "चोग्याल युग" कहा जाता है।

लेखकों का आरोप है कि "तिब्बत 13वीं शताब्दी में अधिकृत ढ़ंग से चीन का एक हिस्सा बन गया था।" तिब्बत वास्तव में कब और कैसे चीन का हिस्सा बना? लेखक इस निराधार सिद्धान्त को सिद्ध नहीं कर पाए। इस निर्णायक पहलू पर लेखक चुप क्यों हैं? आईये, हम तथ्यों का निरीक्षण करें।

जैसा कि विदित है, तिब्बत अलग था और 842 ई. तक एक के बाद एक करके 41 राजाओं ने इस पर शासन किया। इसके 396 वर्ष के लंबे पतन के समय में तिब्बती मामलों में चीन कहीं भी नजर नहीं आता। यह पुन: तिब्बत की स्वतन्त्र पहचान दिखाता है, जिससे चीन का कोई सरोकार नहीं है। आईये, अब उन तथ्यों का निरीक्षण करें, जहां से लेखकों ने शुरूआत की है।

यह माना जाता है कि 1207 ई. में तिब्बतियों ने "अपनी निष्ठा

चंगेज़ खान के प्रति गिरवी रखी थी।" अत: उसकी सेना ने 1240 तक तिब्बत पर हमला नहीं किया था।[44]

1244 में राजकुमार गोडन के निमन्त्रण पर चंगेज़ खान का यह पोता साक्य पण्डित कुंगा ग्यालत्सेन (1182-1251) से कोकोनोर क्षेत्र में 1247 में मिला। यद्यपि यह लेखकों ने जैसा आरोप लगाया, न तो "तिब्बत पर विचार-विमर्श के लिए" था और न ही दोनों नेताओं के बीच वार्ता का लिखित निमन्त्रण-पत्र ही था, जिसके परिणाम स्वरूप तिब्बत मंगोलिया से जुड़ा। क्या लेखक इस समझौते का मूल पाठ उपलब्ध करवा सकते हैं ?

दरअसल उस निमन्त्रण पत्र में गोडन ने लिखा "……………… हमारी अज्ञानी जनता को यह उपदेश देने के लिए कि उनका नैतिक और आध्यात्मिक आचरण किस प्रकार हो, हमें एक लामा की जरूरत है"। ………………इत्यादि।[45] अन्तत: साक्य पण्डित ने गोडन को बौद्ध शिक्षा दी और बदले में गोडन ने उन्हे मध्य तिब्बत के 13 प्रान्तों (राज्यों) पर शासन के अधिकार दिए।

1244 में पण्डित के दो भतीजों में फाग्पा लोडरो ग्यालत्सेन 10 साल का तथा चकना 6 साल का था।[47] और तिस पर भी लेखक दावा करते हैं कि उन्हे "तिब्बत पर विचार-विमर्श" के लिए भेजा गया था। यह सिर्फ अनुमान का ही विषय है कि इतनी सी कम उम्र में उन भतीजों ने तिब्बत पर कैसा विचार-विमर्श किया होगा ? लेखकों का यह दोषारोपण भी सही नहीं है कि 1253 में मेंगक्खां ने तिब्बत का कथित एकीकरण किया।

1253 में कुबलाई खां मगोलों का शासक बना अगले ही वर्ष उसने साक्य फाग्पा को तिब्बत के तीन राज्य शासन करने के लिए भेंट में दिए, जिन पर पर मंगोलों का बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं था।[48] 1254 में कुबलाई खां ने फाग्पा को तिब्बत पर सर्वोच्च अधिकार देते हुए लिखा था "यह खत, मेरी तरफ से तोहफा है। मैं आपको सारे तिब्बत पर अधिकार प्रदान करता हूं………।"[48] इस प्रकार तिब्बत के साक्य फाग्पा और मंगोलों के कुबलाई के बीच अद्वितीय [जजमान-लामा] या [संरक्षक-गुरु] संबंध बने।[50] उस समय चीन शुंग वंश के अधीन था और मंगोलों तथा तिब्बतियों के बीच घमासान लड़ाई चल रही थी। यद्यपि, तिब्बत उदासीन रहा।

लेखकों के अनुसार "1271 ई. में युआन वंश के संस्थापक सम्राट कुबलाई खां ने चीन का एकीकरन किया (और इसे युआन कहा)। इसके बाद युआन राजकुल की केन्द्रीय सरकार ने महत्वपूर्ण उपायों का एक क्रम अपनाया और तिब्बत पर इसका प्रशासन ऊँचा उठता गया।

यदि लेखकों की मंशा यह लक्षित करने की है कि मंगोल वंश के दौरान तिब्बत का चीन से एकीकरण हुआ तो विवाद निराधार है। हम सभी जानते हैं कि मंगोलिया, कोरिया, साइबेरिया (अमूर मुहाने से ईतिवह), उत्तरी वियतनाम, लाओस तथा अनान के हिस्से शामिल थे।[51] यद्यपि, तिब्बत के लिए 1253 के कुबलाई खान में फर्क नहीं था। इस संबंध में बेल का कथन सही है कि "साक्य फाग्पा ने सम्राट को बौद्धत्व की तरफ मोड़ा और बदले में तिब्बत की प्रभुसत्ता पाई।[52].

संक्षेप यह कि मंगोल मध्य एशिया से यूरोप के अन्दरूनी भागों तक तेजी से फैल गए थे उन्होंने पृथ्वी पर महानतम साम्राज्य स्थापित किया और सभी देशों में शीघ्रता से प्रशासनिक परिवर्तन किए। 1206 के प्रारंभ में मगोल न केवल रोमानिया, पोलैण्ड, हंगरी, टर्की, इरान, इराक, अफगानिस्तान, तिब्बत, बर्मा, कोरिया, साईबेरिया, वियतनाम, लाओस तथा कम्बोडिया के लिए ही नहीं बल्कि चीन के लिए भी अजनबी थे।[53]

एक बड़ा सीधा सा प्रश्न यह है कि "चीन के एकीकरण" की थीसिस (शोध) ऊपरलिखित देशों पर क्यों लागू नहीं की गई ? चीनी यह दावा करने में क्यों झिझकते हैं कि ये सब दूसरे देश भी चीन का अभिन्न अंग बन गए ? और (जैसा तिब्बत के संबंध में उन्होंने तर्क दिया) कि चीनियों ने इन देशों पर मंगोलों से सत्ता प्राप्त की ? फिर यह 'एकीकरण' का 'तर्क' कौन स्वीकार करेगा ?

कुबलाई खान से लेकर मंगोलों की 15 पीढ़ियों ने चीन पर शासन किया। आज यदि मंगोलिया दावा करे कि चीन इसका एक अभिन्न हिस्सा है क्योंकि मंगोलों की 15 पीढ़ियों ने चीन पर शासन किया तो चीन क्या करेगा ? क्या चीन मंगोलों के इस दावे के सामने घुटने टेक देगा ? यदि चीन मंगोलिया का यह दावा मान ले तो तिब्बत चीनियों का इस तरह का दावा मानने में बिल्कुल नहीं झिझकेगा लेकिन, चीन को सिद्ध करना होगा कि 1949 से पहले चीन की एक भी पीढ़ी ने तिब्बत पर राज किया।

यह जान लेना भी रोचक रहेगा कि माइकल प्रावडीन मंगोल शाही खानदान के पूर्वजों को तिब्बत में तलाशते हैं।

येसुकाई-बेगातुर, येसुकाई सचमुच ही शक्तिशाली था, अपने ग्यारह पीढ़ियों की वंशावली के बारे में जानता था। उसके 23 पीढ़ी पुराने पूर्वज बुर्ट चीनोग्रे वोफ तिब्बत के सुदूर प्रदेश का राजकुमार था, जिसका नामकरण मर्ल गोआ या रेडियन्ट डो किया गया।[54]

इतिहास में यदि यह शोध सिद्ध हो जाए तब हमें हैरानी होगी कि चीनी इतिहासकार अपने इस दावे को किस खूंटे से बान्धेगा कि मंगोलों के कारण तिब्बत चीन का एक हिस्सा है।

मंगोल राजवंश से तिब्बती सुरक्षा के लिए चो-फोर-त्सो में तिब्बती सैनिक तैनात किए गए थे[55]. यही सादा सा तथ्य निस्संदेह सिद्ध करता है कि चीन में मंगोल शासन के दौरान तिब्बत मंगोल राजवंश से बाहर आजाद देश की तरह रहा।

अपने शोध में लेखक कहते हैं "कुबलाई खां ने जांगजिहान (बाद में उन्होंने इसे बदल कर जुआन झेंगियान कर दिया) नामक राजकीय विभाग स्थापित किया जिसके अधीन देश के बौद्ध मामले, तथा तिब्बती सेना, सरकार और धार्मिक, मामले आते थे। साम्राज्यवादी शिक्षक फाग्पा इसका अध्यक्ष बताया गया...। युआन सम्राट नें तिब्बत को भी साक्य मत के अधीन रखा ...।"

उस समय तिब्बत में एक भयानक सत्ता-संघर्ष हुआ था। अन्त में जंगछुब ग्यालत्सेन (1358-64) ने साक्य मंत्री वाँगस्टन से बलपूर्वक राजनैतिक सत्ता छीन ली।[56].

उनके तर्कानुसार मंगोल वंश को दखल देकर साक्य के पक्ष में तिब्बत संकट हल करना चाहिए था। लेकिन, ऐसा हुआ नहीं। तिब्बत को अपने हाल पर छोड़ दिया गया क्योंकि यह सत्ता-संघर्ष तिब्बत का अन्दरूनी मामला था और मंगोल वंश का इससे कोई लेना देना नहीं था। यह तथ्य मंगोल वंश में तिब्बती अखण्डता के लंबे चौड़े दावे को खारिज कर देता है।

37वें राजा त्रीसङ देत्सन के राज में पहली बार 779 ई. में धर्म तथा राज्य एक जुट हुए न कि लेखकों के दावे के अनुसार साक्य राज के दौरान।

इतिहास के अनुसार तिब्बत 1358[58] में मंगोलों से तथा 1368[59]

में चीनी मंगोल प्रभाव से छुटकारा पा गये। यदि तिब्बत और चीन एक ही देश के रूप में मंगोलों के अधीन थे तो यह कैसे संभव हुआ कि एक तो 1358 में आजाद हो गया जबकि दूसरा एक दशक बाद 1368 में ? उदाहरण के लिए यूचेन-चांग (जिसने बाद में मिंग वंश स्थापित किया) ने चीनियों (तिब्बत को छोड़कर) को मंगोलों के विरुद्ध उठ खड़े होने के लिए जो एलान जारी किया, उसमें लिखा है "ये जंगली सिर्फ आज्ञापालन हेतु बनाए गए हैं, न कि किसी सभ्य देश पर शासन करने के लिए।[60]" चीनियों ने हर्षध्वनि के साथ प्रत्युत्तर दिया था। इसमें, हालांकि, एक भी तिब्बती ने हिस्सा नहीं लिया। इस प्रकार यह थीसिस निराधार है कि मंगोल राज के दौरान तिब्बत चीन का अभिन्न अंग बन गया था।

जैसा हमने ऊपर देखा, मिंग राजवंश का यह दावा तथ्यों की पूरी जालसाज़ी है कि उसका तिब्बत पर दावा मंगोल वंश से उत्तराधिकार में मिला है।

लेखकों का यह दावा भी तथ्यों के विपरीत है कि मिंग वंश के दौरान तिब्बत में मंगोलियन प्रकार का प्रशासन" मूल रूप से समूचा रहा।"

1358 में सीतु चेंग छुब ग्यालत्सेन (शासन 1358-64) ने तिब्बत का नया स्वतन्त्र प्रशासक बनने के बाद तिब्बत के मूल ढांचे में फेर बदल-किया। 13 राज्यों, प्रान्तों (ट्रिकोर) की जगह उसने देश का बंटवारा 13 द्जोंग्स (जिलों) में कर दिया। साक्य नियमों के विपरीत, कानून के मामलों भी सजा देने से पहले जांच की जाने लगी। अपने अपराधियों के लिए तेरह प्रकार की सज़ाएं भी बनाई। [61]

इसके अलावा उसके शासन के दौरान जमीन भी कृषकों में बराबर बांट दी गई तथा कर निर्धारित कर दिया गया कि प्रशासन फसल का छठा भाग कर के रूप में लेगा। उसने पुश्तैनी राज की व्यवस्था को भी बन्द करने का प्रयत्न किया। [62]. सबसे बड़ी बात तो यह है कि उसने चीन की सीमा के साथ विभिन्न जगहों पर कर्मचारी तथा रक्षक नियुक्त किए और तिब्बत के महत्वपूर्ण ठिकानों पर फौजें इकट्ठी कीं। इस महान शासक ने सुरक्षा, सीमा, सैनिक रणनीति, कर संग्रह इत्यादि से संबंधित निर्देशों की एक पुस्तक भी जारी की। [63]

विदित है कि 1368 के साल में चीन में मंगोल शासन का अन्त हुआ। मिंग वंश की स्थापना से पहले तिब्बत आजाद था। और 1349 से 1435 ई. तक 86 सालों में लगातार फाग्मो द्रुग्पा वंश के ग्यारह लामाओं ने एक के बाद एक तिब्बत पर शासन किया।[64].

मिंग वंश ने प्रारम्भिक मंगोल अदालतों की परंपराओं पर चलते हुए एक नए आध्यात्मिक शिक्षक को निमन्त्रित किया। लेकिन किसी भी मर्यादापूर्ण शासक लामा ने निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया क्योंकि दोनों देशों के संबंध उस संबंध से अलग थे जो तिब्बतियों के मंगोलों के साथ थे।

उदाहरण के लिए चीनी शासक यङलों (1403-24) ने गेलुग्पा मत के संस्थापक त्सोंगखपा (1357-1419) को 1409 में चीन आने का न्यौता दिया। यह न्यौता चार बार ठुकराया गया और आखिर में उन्होंने अपने एक शिष्य जैम चेन छोइजे शक येशी को भेजा। इससे साफ पता चलता है कि तिब्बती लामा उस तरह मिंग दरबार के अधीन नहीं थे जिस तरह उन दिनों थे जब चीन पर मंगोलों का शासन होता था।[65]

1579 ई. में मिंग दरबार के एक प्रतिनिधि मण्डल ने तीसरे दलाई लामा को चीन आने का निमन्त्रण दिया। लेकिन दलाई लामा ने इन्कार कर दिया...।[55]

1615 में फिर एक बार सम्राट शेन-तंग ने चौथे दलाई लामा को "नानकिंग के बौद्ध मंदिर को पवित्र करने (आर्शीवाद देने) के विशेष उद्देश्य" से बुलाया...लेकिन किसी कारण से दलाई लामा ने यह न्यौता भी अस्वीकार कर दिया।[67]

लेखक दोषारोपण करते हैं कि इन दिनों तिब्बत का प्रशासन स्थानीय धार्मिक नेताओं को पद देकर उनसे सम्पर्क/सलाह से चलाया जाता था। यदि यही बात है तो वे त्सोंगखपा को "निमन्त्रित" क्यों नहीं कर सके जो सर्वोच्च शासक लामा फाग्मो द्रुग्पा तथा दलाई लामा इत्यादि को छोड़कर स्थानीय नेताओं में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण था। यही एक मात्र जीवंत घटना ही निस्संदेह चीनी दावे के बेतुकेपन को साबित करती है।

दूसरी तरफ खास व्यवहार तथा नाबालिग लामाओं पर भी भव्य पद लाद देने का तिब्बत के मामलों की वास्तविक स्थिति से कोई

महत्व नहीं था। उदाहरण के लिए तिब्बत के राजा को मिंग सम्राट ने राजकीय पत्र भेजते हुए लिखा :—

"………पहले हू लोगों (यानि मंगोलों) ने चीनी सत्ता पर कब्ज़ा जमाया। सैंकड़ों वर्षों तक टोपियां तथा सैण्डिलें विपरीत स्थिति में रहीं। दिलों में कोई रोष पैदा नहीं हुआ ………। गत सालों में हू शासक सत्ता से हट गए। ……आपका तिब्बत राज्य (यहां तिब्बत राज्य पर बल दिया गया है) पश्चिमी धरती पर है। चीन अब संगठित हो चुका है लेकिन, मुझ डर है कि आपने अभी इस बारे में नहीं सुना। इसलिए यह ऐलान………(भेजा जा रहा है) कि (चीन की) प्रजा ने मुझे भगवान की तरह समर्थन दिया है। यह राज्य अब महान मिंग (ग्रेट मिंग) कहलाता है और हुंग-वू की राजकीय उपाधि स्थापित हो चुकी है। मैं अपने भूतपूर्व राजाओं के तरीकों पर चलता हूं और शान्ति स्थापित करता हूं ………। [68]

यह निष्कलंक दस्तावेज मिंग वंश तथा तिब्बत राज्य के बीच उन दिनों के राजकीय संबंधों को सामने लाता है।

लेखकों ने सही स्वीकार किया है कि "………तिब्बती शासकों को, जिनमें गगूपा (करग्यूपा) मत के पाग्मो झुबा (फाग्मो द्रुग्पा), गामा गहूवा (कामा करग्यूपा मत के रिन्वुन्पा (रिनपोंग्पा : इसकी चार पीढ़ियों ने 1435 से 1565 तक तक शासन किया) किग्जाग्वा (गेलूपा) मत के नेता शामिल हैं, को मिंग वंश द्वारा पद दिए गए। लेकिन आपने उन तीन त्सांग्पा राजाओं का जिक्र नहीं किया जिन्होंने तिब्बत पर 1566 से 1641 तक शासन किया।[69]"

1578 ई. में ड्रेपुंग के महान मठ के मठाधीश सोनम ग्यात्सो ने ने मंगोलों के एक अतिशक्तिशाली सरदार अल्तन खां से भेंट की, जिसने उनको 'दलाई लामा' की उपाधि दी। मंगोल भाषा में 'दलाई' 'समुन्द्र' को कहते हैं जिसका भाव यह कि लामा का ज्ञान समुद्र की तरह गहरा तथा विशाल था। यही उपाधि बाद में उनके दो उत्तराधिकारियों पर अतीत का ध्यान करके लागू की गई। चीनी लेखकों के चश्में में से देखकर तो तिब्बत को बड़ी आसानी से मंगोलिया का हिस्सा कहा जा सकता है क्योंकि 16वीं शताब्दी में अल्तन खां ने तिब्बत के महानतम मठ के प्रमुख को (मठाधीश) को उपाधियां दी थीं।

1642 ई. में गुशरी खां ने सोनम चोफल के साथ कर्मा तेंक्योग

वांगपों पर आक्रमण किया और हार का सामना किया।[71] तदानुरूप उसी वर्ष महान पाँचवे दलाई लामा न्गवांग लाब्संग ग्यात्सो ने तिब्बत पर आध्यात्मिक तथा लौकिक शासन किया।[72] गाँदेन फोदरंग के नाम से प्रचलित सरकार की वर्तमान अवस्था स्थापित की गई जो आज तक चली आ रही है। और तो और, दलाई लामा ने पुराने तिब्बती राजाओं द्वारा पहने जाने वाले रिंचेन ग्यांचा (कीमती आभषण) की पुरानी प्रथा को दोबारा जीवित किया और यह बाद में 1950 तक तिब्बत के नववर्ष का रिवाज हो गया।

सारे तिब्बत पर शासक के प्रतीक के रूप में पाँचवे दलाई लामा ने एक नये निवास पोतला महल को बनवाना शुरू किया और यह उसी पहाड़ी पर था जहां साम्राज्यवादी युग के दौरान 1636 ई. में सम्राट सांङत्सेन गैंपों, जो स्वयं अवलोकितेश्वर के अवतार थे, ने नेपाली राजकुमारी का निवास बनवाया था। तब ल्हासा को तिब्बत की राजधानी घोषित किया गया। दलाई लामा ने तिब्बत की जनगणना करने का निर्देश दिया और यह काम 1648 ई. में पूरा हुआ।[73]

तिब्बत में गांदेन फोदरंग सरकार गठन के सिर्फ दो साल बाद चीन में (1644 में) मांचू सरकार की स्थापना की गई।

1642 ई. में पड़ोसी राज्यों जैसे सिक्किम, नेपाल, लद्दाख तथा भारतीय राजाओं ने गांदेन फोदरंग (नई सरकार) के प्रतिष्ठापन (विधिपूर्वक घोषणा करने) के शुभ अवसर पर शामिल होने अपने प्रतिनिधियों को ल्हासा भेजा।[74] सिक्किम के इतिहास में दर्ज है कि दलाई लामा ने सिक्किम के पहले राजा फुन्सोक नामग्याल (1604-44) को जरूरत पड़ने पर पूरी सहायता तथा समर्थन देने का विश्वास दिलाया था।[75]

1646 में तिब्बत और भूटान के बीच एक नया समझौता हुआ जिसके तहत त्सांग्पा को भेजे जाने वाले चावलों का कर (लोचक) इस सन्धि के बाद प्रतिवर्ष नई सरकार गाडेन फोदरंग को भेजने की बात हुई। लेकिन, यह शान्ति कम समय ही रह पाई : और दोबारा दोनों देशों के बीच लड़ाई हो गई, जिसमें तिब्बत को अपमान झेलना पड़ा।[76]

उसी समय लद्दाख के राजा देलेक नामग्याल त्रिवर्षीय कर (लोचक) तिब्बती सरकार को देने को सहमत हो गया।[77] नया तिब्बती शासक तेन्संग नमग्याल (1644-1670) दलाई लामा के प्रति सम्मान प्रकट करने व्यक्तिगत रूप से और सिक्किम में सोलहवीं तिब्बती

संहिता (कानून) लागू करने पर परामर्श लेने ल्हासा गया।[78]

अपनी बारी आने पर 1661 ई. में नेपाल ने तिब्बत-नेपाल सीमा पर मुसीबत खड़ी कर दी। ताशी त्सेपा, ग्यान्द्रोपा तथा मेचांग्चपो के नेतृत्व में तिब्बती सेनाएं इन नेपाली सैनिकों को खदेड़ने गईं।[79]

इस प्रकार तिब्बत के अपने पड़ौसी देशों के साथ बाहरी मामलों के सम्बन्धों में मांचू चीनी कहीं भी नज़र नहीं आते। तिब्बती प्रभुसत्ता का मांचुओं के अधीन होना तो दूर की बात है।

`लेखकों के अनुसार 1652 में पाँचवें महान दलाई लामा "बीजिंग गए जहां उन्होंने राजा (मांचू वंश 1652-1911) को सलामी दी।" यद्यपि, यह तथ्य छूट गया कि 1649 और 1651 के बीच मांचू के नए सम्राट शून-चीन ने कई कूटनीतिज्ञ मिशन पाँचवें दलाई लामा के पास उन्हें पीकिंग पधारने का न्यौता देने भेजा ताकि वे (दलाई लामा) अपने प्रभाव के कारण मंगोलों को खदेड़ दें। आखिर में दलाई लामा ने इस शर्त पर निमन्त्रण स्वीकार किया वे, चीन में गर्मी तथा चेचक महामारी फैली होने के कारण, वहां ज्यादा समय नहीं रूकेंगे।[80] निस्संदेह उनकी यह यात्रा एक प्रभुसत्ता राज्य के अध्यक्ष की दूसरे प्रभुसत्ता देश की यात्रा थी।

यदि 'सलामी' का ही प्रश्न है, जैसा लेखक कहते हैं, तो दलाई लामा के पास कूटनीतिज्ञ मिशन भेजने, न्यौता देने और चीन आने की प्रार्थना करने की बात ही नहीं उठती।

दलाई लामा को उपाधि/पद देने की पेशकश का उनकी तत्कालीन राजनैतिक हैसियत से कोई ताल्लुक नहीं है क्योंकि, वे पहले ही तिब्बत के सर्वोच्च शासक थे। और तो और उनके तिब्बत लौटने पर जोंखाङ के केन्द्रीय मन्दिर में रस्म के रूप में जोवो साक्य मुनि को सुनहरी मोहर दी गई, जो उन्होंने कभी प्रयोग नहीं की। अतः स्पष्ट है कि दलाई लामा को मांचू, तिब्बती तथा चीनी लिखाई वाली दी गई मोहर का कोई और महत्व नहीं है।

पहले भी हमने देखा कि एक साम्राज्य द्वारा दूसरे साम्राज्य को उपाधि देने का मतलब यह नहीं कि लेने वाले ने उपाधि देने वाले की अधीनता मान ली। यदि ऐसा होता तो तिब्बती पूरे चीन पर अपनी प्रभुसत्ता का दावा पेश कर सकता है क्योंकि, राजा त्रीसङ देत्सन ने नए चीनी सम्राट चेंग-हंग को टर्कवाइज मोहर दी थी। ऐसे दावे कौन

मानेगा? इस प्रकार उपाधि दे देने का कोई राजनैतिक या कानूनी महत्व नहीं है। उदाहरण के लिए तीसरे और पांचवे दलाई लामा ने मंगोल राजा 'हलाकू' को मुहर भेंट की थी। अभी पीछे ही 1889 में 13वें दलाई लामा ने मंगोल के राजा को उपाधि तथा मोहर तब दी थी जब वह तिब्बत में उनसे भेंट करने आया। अब यदि तिब्बत मंगोलिया पर प्रभुसत्ता का दावा उस आधार पर करे जिस से लेखकों ने अपना हित साधा है तो क्या मंगोलिया मान जाएगा?

यह सच है कि मांचू सम्राट ने टका नामक जगह पर दलाई लामा को 1653 में सुनहरी मुहर दी थी, लेकिन, यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि मुहर राजधानी से दूर राजा के माध्यम से प्राप्तकर्ताओं ने दलाई लामा को भेंट की थी। उसी समय दलाई लामा ने भी एक उपाधि तथा सुनहरी प्लेट दी थी जिस पर मांचू, तिब्बती तथा चोनी भाषा में उपाधि अंकित की गई थी।

यदि उपाधि देने का इतना ज्यादा महत्व है तो इसे भेंट करते समय किसी समारोह का आयोजन क्यों नहीं किया गया? क्या दलाई लामा ने उपाधि पाने के लिए प्रार्थना की थी? शर्तिया नहीं!

इस प्रकार उनके लंबे चौड़े दावे का कोई महत्व नहीं है कि "सभी दलाई लामाओं और बैन्कन्स (पांचेन) को केन्द्रीय सरकार द्वारा उपाधियां मिलीं।"

तिब्बत ने पाँचवें दलाई लामा के राज में कभी भी चोन की तत्कालोन मांचू सरकार को "केन्द्रीय सरकार" नहीं माना, जिसका लेखक दोषारोपण करते हैं। इसे सिद्ध करने के लिए एक भी दस्तावेज नहीं है। और न ही मांचू तथा तिब्बतियों ने मांचुओं को कोई कर दिया। मिंग वंश की स्थापना के समय से लेकर मंगोलिया तथा तिब्बत समान स्तर की प्रभुसत्ता वाले देश थे। उदाहरण के लिए 1665 ई. में सम्राट कांग-हृशी ने दलाई लामा से प्रार्थना की थी कि वे मध्यस्थता करें ताकि मंगोलिया के साथ शान्तिपूर्ण समझौता हो सके। तिब्बती प्रतिनिधियों की मध्यस्थता के कारण समझौता हो सका। था।[82]

1672 ई. में मांचू सम्राट ने आन्तरिक विद्रोह भांपने के बाद एक बार फिर तोन कर्मचारी तिब्बत भेजकर तिब्बत तथा मंगोलों से सैनिक सहायता मांगी थी। दलाई लामा ने उत्तर दिया था:

"..............जब मैंने चीन यात्रा की थी तो आपके पिताजी

सम्राट शुन-ची मेरे प्रति विशेष दयालु तथा शिष्ट रहे थे, और मैंने तो हमेशा ही आपके देश (यहां आपके देश को बल देकर कहा गया है) की शान्ति और खुशहाली के लिए ईश्वर से प्रार्थना की है...... । ...... मैं नहीं समझता कि वे (सैनिक) आपके लिए बहुत ज्यादा सहायक होंगे, और मैं समझता हूं कि उन्हें चीन भेजना नासमझी होगी ।[83]

मांचू सम्राट की प्रार्थना ठुकरा दी गई। लेखकों की केन्द्रीय सरकार की थीसिस (शोध) उपरोक्त निश्कलंक दस्तावेज से छिन्न-भिन्न हो जाती है ।

जब 'असंतुष्ट' मंत्री पाइस-चियांग वुज़मैन तिब्बत पहुंचा तो दलाई लामा ने साफ कह दिया था कि सम्राट और मंत्री के बीच का झगड़ा चीन का अन्दरुनी मामला है और तिब्बत को इससे कोई सरोकार नहीं है। साथ ही उन्होंने उसे सैनिक सहायता देने से भी इन्कार कर दिया ।[84]

इस तरह की ऐतिहासिक घटनाओं से स्पष्ट है कि मांचुओं तथा गुशरी खां के हस्तक्षेप के बिना तिब्बत अपने प्रभुसत्ता अधिकारियों का प्रयोग कर रहा था ।

1682 में दलाई लामा की मृत्यु के बाद पूर्वी तुर्किस्तान क्षेत्र के द्जून्गर मंगोल कबाइलियों ने तिब्बत पर चढ़ाई कर दी और गुशरी खां के उत्तराधिकारी ल्हाजङ खां की हत्या कर दी। इस प्रकरण से मिले मौके का लाभ उठाकर मांचू सम्राट ने सेना भेज दी जो कबाईलियों से भिड़ीं और कोकोनोर क्षेत्र में उन्होंने दजून्गर मंगोलों को हरा दिया। दजून्गरों को तिब्बत से बाहर खदेड़ दिया गया। इस प्रकार मांचुओं के लिए तिब्बत में हस्तक्षेप करने का रास्ता साफ हो गया। तो भी, सम्राट ने तिब्बत को कभी अपने साम्राज्य का हिस्सा नहीं माना। उदाहरण के लिए 1700 में सम्राट किंग-ह्शाई ने अपने विशाल साम्राज्य का नक्शा बनवाने का निश्चय किया और यह काम पीकिंग के यहूदी मिशनरी को सौंपा, इस मिशनरी संघ के नेता फादर जे. बी. रेगिस थे और तिब्बत को उनके कार्यक्षेत्र (नक्शा बनाना) में शामिल नहीं किया गया ।[85]

1718 से बाद में सातवें दलाई लामा के आदमियों की सुरक्षा निगरानी का बहाना लेकर दो हज़ार सैनिक ल्हासा जा पहुंचे। 1720 में सातवें दलाई लामा केल्सांग ग्यास्तो को पोतला में सिंहासनारुढ़

कर दिया गया।[86]

1728 ई. में पहली बार दो मांचू प्रतिनिधि तथा 500 सैनिक ल्हासा में तैनात कर दिये गए। प्रतिनिधि को अम्बान कहा जाता था और वे ही किले की सेना के इंचार्ज होते थे। फिर भी वे तिब्बत के प्रशासन में सहायता छोड़ हस्तक्षेप भी नहीं करते थे, जैसा लेखकों ने लिखा है। उन अम्बानों की ल्हासा में लगातार रहने की मंशा तथा जोखिम आजकल के कूटनीतिक मिशनों की तरह थी। 1750 में चीनी अम्बान और उसकी पूरी सेना को तिब्बतियों ने मौत के घाट उतार दिया था क्योंकि व उचित व्यवहार नहीं कर पाए थे।[87]

1751 ई. में सातवें दलाई लामा (1708-1757) ने तिब्बत पर पूर्ण आध्यात्मिक तथा लौकिक सत्ता ग्रहण की, पहलो बार मंत्रियों की कशाग (परिषद्) नामक परिषद् बनाई गई यद्यपि, मत्रियों की नियुक्त पहली बार पांचवें दलाई लामा के समय हो गई थी (होनी शुरू हो गई थी) ये मंत्री दलाई लामा द्वारा सीधे ही नियुक्त किए जाते थे (और अम्बानों का इसमें कोई हिस्सा नहीं होता था)।

इसके बावजूद तथ्यों को तोड़-मरोड़कर लेखक ब्यान करते हैं कि "1761 ई. में उसने (मांचूओं ने) दलाई लामा और उच्चायुक्त (अम्बान) के नेतृत्व में कशा (कशाग्) स्थानीय सरकार बनाने का निश्चय किया। दलाई लामा तथा उच्चायुक्त, दोनों की सहमति से चुने गए चार कालोन दिन प्रतिदिन के राजनैतिक तथा धार्मिक कार्यों की अध्यक्षता करते थे ·········इस प्रकार की स्थानीय सरकार 1959 तक अस्तित्व में रही।"

यदि लेखकों के दावे में सच्चाई है तो दलाई लामा की मृत्यु के बाद राजप्रतिनिधि कैसे नियुक्त किए जाते थे? तिब्बती नीति के इस निर्णायक पहलू पर प्रकाश क्यों नहीं डाला गया? इतिहास बताता है कि छठे, आठवें, नवें, दसवें और बारहवें दलाई लामा ज्यादा समय जीवित नहीं रहे। तिब्बती सरकार ने तब दलाई लामाओं के बिना कैसे काम चलाया?

सही बात तो यह है कि दलाई लामा की मृत्यु हो जाने या उसके नाबालिग होने की स्थिति में कालोन, सरकारी स्टाफ, दूसरे क्षेत्रों के प्रतिनिधि तथा मठाधीशों से मिलकर बनी त्सोन्दू (तिब्बती राष्ट्रीय अस्सैंबली) राज प्रतिनिधि (रीजैंट) की नियुक्ति करती थी। इस

अस्सैंबली में अम्बान कहीं नज़र नहीं आते थे।

उदाहरण के लिए 1757 में सातवें दलाई लामा की मृत्यु के बाद तिब्बती राष्ट्रीय अस्सेंबली ने देमो नवांग जेमफैल देलेक-ग्यात्सो को राज-प्रतिनिधि नियुक्त किया। 1777 में उसकी असमय मृत्यु के बाद अस्सेंबली ने त्सादीन नवांग त्सुल्तरिम को राजप्रतिनिधि नियुक्त किया।

लेखकों के तर्क के अनुसार दलाई लामा की मृत्यु के बाद अम्बान शासन करने को बाध्य थे क्योंकि "उच्चायुक्त, दलाई लामा और बंकन की हैसियत समान थी और वे स्थानीय सरकार के मामले संभालते थे.........। उच्चायुक्त अनन्य रूप से कूटनीतिक संबंध संभालते थे।" लेकिन अम्बानों ने कभी भी तिब्बत पर शासन नहीं किया। अम्बानों को तो तिब्बती राष्ट्रीय अस्सेंबली की कार्यवाही में भी भाग लेने की अनुमति नहीं थी। तब अम्बान अपनी शक्तियों का प्रयोग कैसे करते होंगे?

लेखकों के अनुसार तब तिब्बत की सरकार "स्थानीय सरकार" थी, ऐसे में यह स्वाभाविक ही है कि इस 'स्थानीय सरकार' का अध्यक्ष केन्द्रीय सरकार नियुक्त करे। मांचू सरकार ने उनकी गैर हाज़री में (दलाई लामा न रहने पर कभी भी दलाई लामा नियुक्त नहीं किए और न ही राज-प्रतिनिधि) और फिर, गांदेन फोदरंग नामक तिब्बती किस्म की सरकार एक शताब्दी पहले ही (मांचू वंश से पहले) स्थापित की जा चुकी थी। फिर मांचुओं द्वारा 1751 ई० में इसे दोबारा स्थापित करने की क्या जरूरत थी?

1791 में नेपाल ने तिब्बत पर चढ़ाई कर दी। लेखक आगे कहते हैं "क्विंग सरकार ने क्षेत्र (तिब्बत) की सुरक्षा करने के लिए समय गंवाए बिना फौज तैनात कर दी और इस प्रकार मातृभूमि की एकता बनाए रखी।"

सचमुच ऐसा ही है तो मांचू सरकार इस 'एकता' को तब क्यों नहीं बना पाई जब नेपाल ने क्रमश: 1650[88] में तथा 1788[89] में हमला किया था और हार गया था।

1650 ई. में आगे पूर्व में यात्रा मार्ग की धमकी के जवाब में काठमाण्डू ने खुद को ताकतवर समझकर हिमालय पार व्यापार पर भी एकाधिकार मांगा और तिब्बत पर चढ़ाई कर दी। एक निर्णायक विजय के बाद नेपालियों ने तिब्बतियों को इस अपमानजनक सन्धि पर

हस्ताक्षर करने को मजबूर कर दिया जिसमें नेपाल ने तिब्बत के लिए सिक्के ढालने तथा आपूर्ति करने के अधिकार प्राप्त कर लिए और तिब्बती चाहे तो सीधे ही चान्दी दे दें या इन सिक्कों की कीमत का सोना।[90]

दो दशक बाद तिब्बत में जब लद्दाख, गढ़वाल तथा कश्मीर की घुसपैठ हो जाने से नेपाल में से व्यापार मार्ग टूट गया तो अपने एकाधिकार को दोबारा बनाने के लिए नेपाल ने 1788 में तिब्बत पर आक्रमण कर दिया। अगली जून में हार जाने के बाद तिब्बत नेपाल में से व्यापार मार्ग देने की सन्धि पर हस्ताक्षर करने को मजबूर हो गया।[91]

1791 ई. में नेपाल ने तिब्बत पर हमला कर दिया क्योंकि तिब्बत ने पहली बार ल्हासा में अपनी टकसाल बना ली थी।[92] इससे क्रमशः 1650 तथा 1789 में नेपाल के साथ हुए मुद्रा-समझौते का उल्लंघन होता था। इस बार "मांचू सम्राट ने लंबे समय की दोस्ती के संबंधों के रूप में शाही सेना भेजी।" और तो और यह सहायता जैसी थी जो जापान के साथ युद्ध के समय चीनियों ने सोवियत रूस या संयक्त राज्य अमेरिका से मांगी थी। और फिर, इसमें भी चीनियों की मंशा थी कि गोरखाओं को खदेड़ कर ल्हासा में अपनी टकसाल लगा लें और उन्होंने 1792 में ऐसा कर भी लिया।[94]

मांचू सरकार ने तिब्बत सरकार पर टकसाल बन्द करने का दबाव डाला लेकिन, नाकाम रहा। आखिरकार, 1836 में तिब्बती सरकार ने मांचू टकसाल जबरदस्ती बन्द करवा दिया।[95]

अतीत में तिब्बत ने अपने देश में नेपाली मुद्रा के प्रचलन की मंजूरी दी थी। एक मात्र तथ्य तो यह है कि अभी तिब्बत ने सिक्के ढाले नहीं थे। दूसरी तरफ मांचू वंश की अपनी मुद्रा तो थी। तो फिर मांचू वंश की मुद्रा तिब्बत में क्यों प्रचलित नहीं हुई? तिब्बत ने मांचू वंश की अपेक्षा नेपाल से मुद्रा समझौता क्यों किया? इस पर मांचू सरकार ने एतराज़ क्यों नहीं किया? और अन्त में जब तिब्बत ने 1890 में तिब्बत की गांदेन फोदरंग नामक सरकार की अपनी कागज की मुद्रा छापी तब अम्बानों का अधिकार कहां गया था?

उपरोक्त तथ्यों से साफ पता चलता है कि तिब्बत के प्रशासन से से संबधित तथाकथित अधिनियम की 29 धाराओं का तिब्बत में कभी प्रभाव नहीं रहा।

"29 धाराओं" का विश्लेषण

इनमें से एक अधिनियम का दावा है कि दलाई लामा, पांचेन लामा तथा अम्बान के पद बराबर थे। जैसा कि हमने पहले देखा इस बात में कोई दम नहीं है। इन आधारहीन दावों तथा इनके सच के प्रति अनादर भरे हो-हल्ले को झूठ सिद्ध करने के लिए सारे तिब्बती इतिहास का निरीक्षण किया जा सकता है।

अम्बान सिर्फ प्रतिनिधि होने के अलावा ज्यादा कुछ भी नहीं थे, इसे सिद्ध करने के लिए इतना ही काफी है कि वे तिब्बत सरकार के नियन्त्रण में ही घूमने फिरने की आजादी उठा सकते थे। यह सिर्फ कोरी कल्पना ही है कि अम्बान कूटनीतिक संबंध, बजट, तथा तिब्बती सेना की संख्या इत्यादि-इत्यादी संभालते थे। व्याख्या के लिए एक उदाहरण देखिए : आठवें दलाई लामा (1758-1804) के शासन के दौरान भूटान तथा ब्रिटिश-भारत के बीच 1771 में एक विवाद हो गया। 1774 में तिब्बती प्रतिनिधियों ने शान्ति बहाल की। बंगाल के गर्वनर-जनरल डबल्लू हेस्टिंग ने जार्ज बेगले तथा डी. एलेकजेण्डर हैमिल्टन को तिब्बतियों का धन्यवाद करने भेजा। तिब्बत में दाखिल होने से पहले उन्होंने भूटान में तीन महीने अम्बानों से नहीं बल्कि, तिब्बत सरकार से अनुमति लेने के इन्तजार में बिताए थे।[96]

दूसरी बात, मांचू सम्राट 'चेंग-लांग' ने पांचेन लाबसंग येशी को चीन आने का न्यौता दिया था। तदानुसार उसने यात्रा परमिट तिब्बत सरकार से मांगा था औद फिर चीन गया था। यदि तिब्बत के प्रशासन से संबंधित तथाकथित 29 धाराएं अस्तित्व में होंती तो मांचू सम्राट से निमन्त्रण मिलने पर पांचेन रिम्पोछे की तिब्बत सरकार से अनुमति मांगने की बात ही नहीं होती। यह तो संभव है कि "तिब्बत पर शासन" की संदिग्ध इच्छा से मांचू सम्राट ने यह तथाकथित 29 धाराएं ईजाद की हों लेकिन, यदि ये अस्तित्व में थीं तो सिर्फ कागज़ों में ही थीं। खैर ! चाहे कुछ भी हो, यह तथाकथित 29 धाराएं तिब्बत में कभी लागू नहीं रहीं।

इनमें से एक धारा के अनुसार "दलाई लामा, बेंकन तथा एक जीवित बुद्ध का पुनः अवतार, उच्चायुक्त के निरीक्षण तले, सोने के पात्र में से लाटरी निकालकर निश्चित करना चाहिए। तिब्बत में सैंकड़ों जीवित बौद्ध थे। फिर ये अम्बान इस प्रमाण का जीवित बौद्ध का

कैसा निरीक्षण करते होंगें, सोचने की ही बात है। जहां तक दलाई लामा के चुनाव की बात है, इसमें अम्बान की कोई भागीदारी थी ही नहीं। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है" यदि वास्तव में ही चीनी शासकों के पास दलाई लामा नियुक्त करने की शक्ति थी तो पात्र के प्रयोग का प्रश्न हो नहीं उठता, क्योंकि प्रशासक उम्मीदवारों में से किसी एक का चयन बड़े आराम से कर सकता था। इसलिए यह तथ्य कि सच्चे अवतार के प्रकट होने की सच्चाई को प्रमाणित (साक्ष्य) करने के लिए सर्वशक्तिमान का आह्‌वान तथा पात्र का प्रयोग करना······" स्पष्ट करता है कि दलाई लामा की नियुक्ति में चीनियों का किसी किस्म का प्रभाव नहीं था।[97]

शोधकर्ताओं ने 1793 से 1885 तक 92 निर्णायक वर्षों के तिब्बती इतिहास से भटकने वाला रास्ता चुना। इसका क्या कारण है? क्या सिर्फ अज्ञानता? शायद ऐसा हो लेकिन, रिव्यू के फायदे के लिए मैं दक्षिणी तथा पश्चिमी पड़ौसियों के साथ संबंधों पर बल देते हुए इस खाली जगह (निर्वात) को तिब्बती इतिहास की 'गुम अवधि' के संक्षिप्त विवरण से पूरा करना चाहूंगा।

नेपाली राजा गिरवन युद्ध विक्रम शाह ने 1814 में ब्रिटिश के साथ गोरखा युद्ध में तिब्बत सरकार के सहायता की अपील की थी। तिब्बत ने उनकी सफलता की कामना करते हुए नेपालियों का नैतिक साथ दिया था।[98]

1841 में कश्मीर के महाराजा गुलाब सिंह के वज़ीर ज़ोरावर सिंह ने लद्दाखी सेना के साथ तिब्बत पर आक्रमण किया। नगारी कोर्सुम में एक भयानक युद्ध हुआ। देपोन (जनरल) शत्रा और दपोन सुरखंग के नेतृत्व में तिब्बती सेना हार गई थी। तिब्बत सरकार ने कालोन पालोन पाल्डुन के आधीन रिलीफ सेना तुरन्त भेज दी। अगले युद्ध में लड़ाई पांच दिन चली और ज़ोरावर सिंह की सेनाएं हार गई।[99]

1842 में महाराजा गुलाब सिंह ने दीवान हरी सिंह और रत्न के नेतृत्व में लद्दाख में रिलीफ़ सेना भेज दी। इस डोगरा युद्ध में तिब्बती हार गए और परिणामस्वरूप इसी वर्ष लद्दाख और तिब्बत में एक सन्धि हुई। दोबारा फिर 1853 में तिब्बत और लद्दाख के सीमा कर्मचारियों के बीच लद्दाख के साथ व्यापारिक समझौता हुआ।[100]

1885 में गोरखाओं ने व्यापार उल्लंघन का बहाना लेकर तिब्बत

पर हमला कर दिया और नन्यांग, रांगशहर, दजोंग्खा और पुरांग के जिले कब्जे में ले लिए। तिब्बती इन राज्यों को 1856 तक छुड़वाने में असफल रहे। लेकिन तिब्बत ने हालांकि हारी हुई पार्टी की तरह, नेपाल के साथ 1856 की सन्धि पर एक बराबर के स्वतन्त्र देश की हैसियत से हस्ताक्षर किए। इस सन्धि के उपवाक्य II का कहना है।

"तिब्बत देश महज तीर्थ स्थल या लामा का पूजास्थल है अत: भविष्य में कोई राजा (पींकिंग के राजा समेत) की सेना यदि तिब्बत पर आक्रमण करती है तो गोरखा सरकार तिब्बत सरकार की सत्ता को यथासंभव सहायता देगी······।[102]

1883 में नेपाली दुकानदारों और दो तिब्बती महिलाओं के बीच झगड़ा हो गया। तिब्बती सरकार ने ल्हासा में नेपाली प्रतिनिधियों को साथ लेकर झगड़ा सुलझाया।[103]

1885 में भूटान में नागरिक अशान्ति हो गई। विरोधी पक्षों के प्रतिनिधि अल् दोर्जी और गोजिन तांडिम को दलाई लामा से मध्य-स्थता करने की प्रार्थना हेतु ल्हासा भेजा गया। इसी कारण कालोन (मंत्री) राम्पा को भूटान में पारो भेजा गया। तिब्बत की मध्यस्थता के कारण नागरिक झगड़ा शान्त हो गया और भूटानी दूतों को भूटान की तरफ से कृतज्ञता तथा प्रशंसा अभिव्यक्त करने ल्हासा भेजा गया।[104]

1889 में मंगोल राजा 'धार्गो' ने ल्हासा में दलाई लामा के दर्शन किए और उपाधि तथा मोहर प्राप्त की।[105]

1894 में पुरोहित कर्मचारियों ने राज प्रतिनिधि चोकई ग्यालत्सेन कुदीलिंग को कशाग के गठन से संबंधित एक प्रार्थना पत्र दिया। उनका दावा था कि यह लगभग सारी की सारी खानदानी उत्तराधिकार के सिद्धान्तों पर आधारित थी। इसके सदस्य उच्च घरानों के प्रमुख अप्रवीण कर्मचारी थे जबकि, नियुक्ति के लिए साधुओं, विद्वानों तथा उपलब्धि प्राप्त इंसानों की अनदेखी की गई है। यह प्रार्थना कशाग, त्सोन्दू (तिब्बती राष्ट्रीय असेंबली) की तथा राज प्रतिनिधि की मीटिंग के सामने रखी गई और यहां निश्चय किया गया कि भविष्य में एक महन्त कर्मचारी भी में कशाग में कालोन (मंत्री) के रूप में काम किया करेगा। इस बात पर भी सहमति हुई कि कशाग मंत्रियों के चुनाव में खानदान के उत्तराधिकार को निर्णायक तत्व के रूप में जरूरी नहीं माना जायेगा, तथा जो भी कर्मचारी उपलब्धि प्राप्त करेगा या विद्वान

होगा, कालोन के पद पर नियुक्ति के योग्य माना, जाएगा।[106]

परमपूज्य ने 1896 में अपने प्रतिनिधि वेन भेजे। तिब्बत-रूसी संबंध सुधारने के लिए नवांग लोबसंग को मंगोल साधु दोर्जी के साथ ज़ार निकोलस-II के पास भी भेजा गया।[107]

(भाग—I)

टिप्पणियां

1. त्सेपोन डब्ल्यू. डी. शाक्बपा, तिब्बत : ए पॉलिटिकल हिस्टरी (न्यू हैवन एण्ड लन्दन) (1967), पृष्ठ 23. 2. वही 3. वही पृष्ठ 25 4. वही पृष्ठ 28. 5. गेदुन चोएफल, द व्हाइट एन्नाल्स ; साम्तन नोर्बू, अनुवाद (धर्मशाला, 1978) पृष्ठ 23. 6. त्सुंग-लीन शेन तथा शेन. ची ल्यू, तिब्बत एण्ड् द तिब्बतन्ज न्यू यॉर्क, 1973) पृ. 23. 7. हेल्मुट हॉफमैन तथा अन्य : तिब्बत : ए हैण्डबुक (ब्लूमिंगटन, 1975) पृ. 42-43. 8. शाक्बपा, अक 1, पृ. 29. 9. हॉफमैन, अंक 7, पृ. 43. 10. वही। 11. तुन हांग पृ. 14. 12. क्रिस्टोफर आई. बैकविद : द तिब्बतन एम्पायर इन द वैस्ट, लेख माइंकल एरिस तथा आंग सेन सू कयी के संपादन में तिब्बतन स्ट्डीज : इन अनार ऑफ ह्यू रिचर्डसन (नई दिल्ली, 1988) पृ. 31 पर छापा था। 13. शाक्बपा नं. 1 पृ. 30. 14. एच. ई. रिचर्डसन, ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ तिब्बत (न्यू यॉर्क 1962) पृ. 29. 15. वही 16. वही, पृ. 30. 17. शाक्बपा नं. 1, पृ. 30. 18. वही, पृ. 31, 19. वही 20. वही पृ. 33 21. बैकविद न, 12, पृ. 33 22. वही 23. वही, पृ. 34. 24. पेलियट पृ. 27 25. यान्तेन ग्यात्सो का अप्रकाशित कार्य 26. शाक्बपा नं. 1, पृ. 39. 27. परमपूज्य दलाई लामा का सूचना कार्यालय, तिब्बतन नेशनल अपराईजिंग : 20 वी एनीवर्सरी ऑफ द 10 मार्च (धर्मशाला, 1979) पृ. 14. 28. शेन, न. 1 पृ. 24 29. शाक्बपा, न. 1, पृ. 38. 30. वही पृ. 41 31. हॉफमैन, न. 7, पृ. 44 32. वही 33. वही 34. फिलिप के. हिट्टी : हिस्टरी ऑफ अरब्ज (लन्दन 1956) पृष्ठ 208-209. 35. बैकविद न. 12, पृ. 30 36. शाक्बपा न. 1, पृ. 43 37. रिचर्डसन, न. 14, पृ. 29 38. क्रोनीकल्स, पृ 73-74. 39. वही, पृ. 70 40. दलाई लामा, आई लैण्ड एण्ड आई पीपल (लन्दन, 1962) पृ. 71 41. वही 42. अन्त-राष्ट्रीय कानून पर ऑपनहीम देखें। 43. शाक्बपा न. 1, पृ. 53

44. वही पृ. 61 45. गांग्ग-रैब्ज. 46. शाक्बपा न. 1, पृ. 63. 47. वही, पृ. 62. 48. वही, पृ. 65 49. वही 50. वही पृ. 71 51. माइकल प्रावडीन, द मंगोल अम्पायर : इट्स राईज एण्ड लीगेसी, इडन और सीडन पॉल, ट्रांस (लन्दन, 1953) 52. सर चार्ल्स बैल, द पीपल ऑफ तिब्बत (लन्दन, 1928) पृ. 15. 53. प्रावडीन न. 1 में विस्तार (डिटेल्स) देखें। 54. वही पृ. 22. 55. ग्याल्तसो, न. 25. 56. शाक्बपा न. 1, पृ. 81 57. वही पृ. 38. 58. वही, पृ. 81 59. वही, पृ. 82. 60. प्रावडीन न. 51, पृ. 386 61. शाक्बपा, वही 62. वही 63. वही 64. दलाई लामा, न. 40, पृ. 65 65. शेन, न. 6, पृ. 41 66. के. ढोन्डुप, दी वाटर-हॉर्स एण्ड अदर यिअर्स; ए हिस्ट्री ऑफ 17th एण्ड 18th सेंचुरी तिब्बत (धर्मशाला, 1984) पृ. 7 67. वही, पृ. 12 68. इलियट स्पर्लिंग, "द 5th कर्मापाज़ एण्ड सम आस्पैक्ट् ऑफ रिलेशिनशप बिटवीन तिब्बत एण्ड 2 अर्ली मिंग" एरिस में न. 12, पृ. 285. 69. दलाई लामा, न. 40, पृ. 65. 70 शाक्बपा न. 1 पृ. 95, रिचर्डसन, न. 14, पृ. 41 71. थोन्दुप, न. 66, पृ. 24-5. 72. वही; शाक्बपा न. 1, पृ. 95. 73. वही, पृ. 28 74. वही, पृ. 27 75. वही 76. शाक्बपा, न. 1, पृ. 113 77. थोन्दुप न. 66, पृ. 31 78. वही 7व. वही 80. शाक्बपा, न. 1, पृ. 113-4 81. ग्याल्तसो, न. 25 82. वही 83. शाक्बपा, न. 1., पृ. 120-1 84. वही 85. एल. ए. वडेल, ल्हासा एण्ड इट्स मिस्टरीज़ (दिल्ली, 1975) पृ. 7 86. शाक्बपा, न. 1, पृ. 140. 87. न्यायविदों का अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन द क्वेश्चन आफ तिब्बत एण्ड द रूल ऑफ ला (जेनेवा, 1959) पृ. 76. 88. एन. जी. रोडस "द डेवलॅपमेन्ट ऑफ करेन्सी इन तिब्बत" एरिस में, न 12, पृ. 264. 89. शाक्बपा न. 1, पृ. 158. 90. एल. ई. रोज, नेपाल: स्ट्रेट्जी फॉर सर्ववाइवल (बार्कले 1971) पृ. 13-4 91. वही पृ 42.7 92. रोड्स, न. 88, पृ. 266 93. शाक्बपा, न. 1, पृ. 169 94. रोड्स न. 88, पृ. 266 95. वही 96. ग्याल्तसो न. 25 97. त्सेपोन ड्ब्ल्यू डी शाक्बपा, "सीकिंग ट्रुथ फ्रॉम फैक्ट्स" जो तिब्बत बुलेटिन (धर्मशाला, 1984) अंक 15, पृ. 67 पर है। 98. शाक्बपा, न. 1. पृ. 174 99. वही, पृ. 177 100. वही, 178-81 101. वही, पृ. 182, रिचर्डसन न. 14, पृ. 247-8 पर टेक्स्ट देखें 102. रिचर्डसन, वही 103. शाक्बपा, न. 1, पृ. 193 104. वही, पृ. 198 105. ग्याल्तसो पृ. न. 25 106. शाक्बपा न. 1, पृ. 194 107. ग्याल्तसो, न. 25